किसान पक्षधरता को लेकर तमाम नारेबीजी के बावजूद यह बजट जिस तरह किसानों को राहत नहीं देता उसी तरह ''स्किल इंडिया'' व ''बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ'' जैसे नारों के बीच शिक्षा को भी चैन नहीं लेने देता। केन्द्रीय बजट में शिक्षा के हिस्से में कटौती लगातार जारी है। निम्न आंकड़े हमें बताते हैं कि पिछले सालों में शिक्षा के लिए आवंटित बजट लगातार कटौती का शिकार होता रहा है।

शिक्षा का बजट

वर्ष	जीडीपी (सकल घरेलू उत्पाद) के संदर्भ में (सभी आंकड़े प्रतिशत में)	केन्द्रीय बजट के संदर्भ में (सभी आंकड़े प्रतिशत में)	स्कूली शिक्षा का कुल बजट (करोड़ रु. में)
2012–13 प्रस्तावित	0.66	4.7	45631
2013–14 प्रस्तावित	0.63	4.6	46856
2014–15 प्रस्तावित	0.55	4.1	45722
2015–16 संशोधित	0.50	3.8	42187
2016–17 संशोधित	0.48	3.7	43554

स्रोतः आंकड़े सीबीजीए, नई दिल्ली के प्रकाशन कन्नेक्टिंग द डॉट्स एन एनालिसिस ऑफ यूनियन बजट 2016-17 से लिए गए हैं।

सार्वजनिक शिक्षा किसी लोकतांत्रिक देश की महत्वपूर्ण जरूरतों में से एक जरूरत होती है। लोकतंत्र के विकास के लिए विवेकशील नागरिकों की जरूरत होती है और सार्वजनिक शिक्षा से यह उम्मीद की जाती है कि वह अपने नागरिकों में विवेकशीलता विकसित करेगी। लोकतंत्र में शिक्षा से यह उम्मीद की जाती है कि वह अपने नागरिकों का विवेक इस रह विकसित करेगी कि वे अपने मत का उचित इस्तेमाल कर सकेंगे। शिक्षा उनमें यह समझ विकसित करेगी कि वे देश में बनने वाली नीतियों को समझ सकेंगे व उनके होने वाले असर को भांप सकेंगे। वे उन नीतियों के निर्माण के वक्त उन्हें सही दिशा देने के लिए अपनी आवाज विभिन्न माध्यमों के जरिए उठा पाएंगे। शिक्षा से यह उम्मीद की जाती है कि वह नागरिकों को इतना समर्थ बनाएगी कि वे सत्ता द्वारा लिए जा रहे निर्णयों पर सवाल उठा पाएंगे और सत्ता द्वारा कोई गलत निर्णय किया जाता है तो लोकातांत्रिक तरीके से उसका विरोध कर पाएंगे। किन्तु उस सार्वजनिक शिक्षा से हम क्या उम्मीद करें जिसकी जीवन शक्ति का गला हर बजट में धीरे-धीरे घोंटा जा रहा है। उसे बजट की लगातार ऐसी कम होती ऑक्सीजन पर रखा जा रहा है कि धीरे-धीरे उसका दम घुटता चला जा रहा है।

इसी के बरक्स जब खबर पढ़ने को मिले, ''स्कूलों के एकीकरण से खाली हुए विद्यालय भवन अब समाजकंटकों के हवाले हो रखे हैं।''[1] तो खबर का यह अदना सा वाक्य हमारी सार्वजनिक शिक्षा व्यवस्था की बदहाली का एक रूपक बनकर हमारी आंखों के सामने उभर आता है। किसान की बर्बादी की कथा की तरह सार्वजनिक शिक्षा की व्यथा भी ऐसी है जिसे सुनने में देश के सत्तावान वर्ग की कोई दिलचस्पी नहीं है।

उस वक्त को गुजरे अभी ज्यादा समय नहीं हुआ है जब हर छोटे गांव, ढाणी, बसाहट में स्कूल खोलने का सपना सरकारें दिखाया करती थीं। पर आज इसके उलट स्कूलों के एकीकरण के नाम पर स्कूल बंद किए जा रहे हैं और हमें पढ़ने को खबरें मिल रही हैं, ''एकीकरण में इस बार एक ही राजस्व ग्राम में स्कूल समायोजन का नियम लागू नहीं होगा। नामांकन कम होने पर एक स्कूल को दूसरे राजस्व ग्राम की स्कूल में भी समायोजित कर दिया जाएगा।''[2] ''दूसरे राजस्व ग्राम में स्कूल एकीकरण के फैसले से जिले के कई राजस्व ग्राम बिना सरकारी स्कूल के हो जाएंगे।''[3]

सवाल यह है कि इस बदलाव को किस नजरिए से देखा जाए? इसमें आने वाले समय की कौनसी आहट सुनी जाए। एक तरफ लगातार शिक्षा के बजट में कटौती है तो दूसरी तरफ स्कूलों का लगातार बंद होते चले जाना है और इस वजह से कई गांवों का स्कूल विहीन हो जाना है और तीसरी तरफ ''निशुल्क व अनिवार्य शिक्षा का कानून 2009''[4] है। पहले दो की दिशा एक मालूम पड़ती है किन्तु तीसरा उस दिशा से तनाव का रिश्ता बनाता है। कानून हर बच्चे को उसके पड़ौस में आरंभिक शिक्षा उपलब्ध करवाने का वायदा करता है[5] जबकि बजट में कटौती व एकीकरण की नीति बच्चे से उसका स्कूल, उसकी शिक्षा छीनने का काम करते हुए नजर आते हैं। क्या उन गांवों में अब कोई बच्चा नहीं बचा होगा या पैदा नहीं होगा जो गांव एकीकरण की उक्त नीति के चलते स्कूल विहिन हो जाने वाले हैं। यह कानून किस तरह उस बच्चे से किए गए शिक्षा के अपने वादे को पूरा कर पाएगा? और अगर यह वादा पूरा नहीं हो पाता है तो किसके खिलाफ कार्यवाही की जा सकेगी? क्या ऐसे में किसी अदालत का दरवाजा खटखटाने का विकल्प बचा रह जाता है। एक युवक या युवती में तब्दील होने के बाद वह बच्चा उस जरूरी उम्र में पड़ौस में शिक्षा उपलब्ध नहीं हो पाने के लिए किसे दोषी करार दे? क्या सरकार यह कह कर अपने कर्तव्य से छुट्टी पा सकती है कि उक्त स्कूल में जरूरत भर के बच्चे ना होने की वजह से हमने उसे बंद कर दिया और दूसरे स्कूल में एकीकृत कर दिया? या सरकार उसे कोई बावूचर थमा कर अपनी इति मान लेगी! बावूचर थमाकर उसे कह देगी कि जाओ अपने लिए कोई उचित स्कूल ढूंढ़ लो! क्या वह अपने पड़ौस में आरंभिक शिक्षा पाने का भी हकदार नहीं है।

इसका एक पहलू यह होगा कि गांव का स्कूल बंद होने से जिन बच्चों की आरंभिक शिक्षा बंद होने की संभावना सबसे ज्यादा होगी उनमें दलित बच्चों और लड़कियों की संख्या सबसे ज्यादा होगी। क्योंकि जिन्हें अपने गांव के स्कूल में शिक्षा हासिल करना इतना मुश्किल हो वे दूसरे गांव जाकर शिक्षा हासिल कर पाएंगे इसकी उम्मीद ना के बराबर है। क्या यह माना जाए कि एकीकरण के नाम पर स्कूल बंद कर सरकार दलित व महिला विरोधी कदम उठा रही है! अगर इस तरह स्कूल बंद हो जाने से इन बच्चों को अपने पड़ौस में आरंभिक शिक्षा उपलब्ध नहीं हो पा रही है तो स्कूल की उन सूनी दीवारों से वे अपनी व्यथा किस भाषा में कहें कि उसे सुना जा सके!

इसका एक और अर्थ निकलता है जो सरकार की मंशा पर सवाल उठाता है। वह यह कि सरकार की दिलचस्पी लोगों को शिक्षित करने में नहीं है। क्योंकि शिक्षा उन्हें विवेकशील नागरिक बनाएगी और ऐसे नागरिक सरकार के निर्णयों, उसकी नीतियों पर सवाल उठाएंगे। ऐसे नागरिकों का किसी भावुक मुद्दे पर ध्रुवीकरण करके वोटों में तब्दील किया जाना आसान नहीं होगा। इससे एक धुंधला सा अर्थ यह भी निकलता महसूस होता है कि सरकार लोकतंत्र की मजबूती नहीं चाहती। क्योंकि मजबूत लोकतंत्र सरकार पर जिम्मेदारी डालता है। उसके किए वादों व लिए निर्णयों के बारे में सवाल उठाने की जगह बनाता है। और आज के समय में शायद सरकार को उससे सवाल किया जाना कम पसंद आता है।

भूल सुधारः शिक्षा विमर्श के मार्च-अप्रैल 2016 अंक के संपादन में विश्वंभर का सहयोग रहा है। छपे हुए प्रारूप में संपादक के तौर पर उनका नाम जाने से छूट गया था। इस भूल के लिए हमें खेद है। वेब व सोफ्ट वर्जन में इसे संशोधित कर दिया गया है। ◆

संदर्भ

1 राजस्थान के भीलवाड़ा जिले की खबर, http://www.bhaskar.com/news/RAJ-OTH-MAT-latest-jahajpur-news-032223-3829952-NOR.html

2 राजस्थान के सीकर जिले की खबर, http://rajasthanpatrika.patrika.com/story/rajasthan/these-schools-may-shift-in-another-village-2131542.html

3 वही।

4. RTE act 2009

5. RTE act 2009, Section 6